Volume 2, Issue 1,

2022

Sadanal Sanwaldas Khanna Mahila Mahavidyalay, Prayagraj
Constituent College of University of Allahabad
Accredited Grade 'A' by NAAC with 3.09 CGPA
Selected Under Strengthening Component of Star College Scheme : DBT
College With Potential for Excellence, Phase II, UGC

World Heritage Day

विश्व विरासत दिवस

Department of Ancient History, Culture & Archaeology

E - BULLETIN (DEPARTMENT OF ANCIENT HISTORY, CULTURE & ARCHAEOLOGY, S.S.KHANNA GIRLS' DEGREE COLLEGE, PRAYAGRAJ

Indian Historical Cities & Heritage

Indian Historical Cities & Heritage

अपनी बात

डॉ मीनू अग्रवाल, कन्वीनर,
प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग,

भविष्य के लिए धरोहर– अतीत की पुरा सम्पदा, किन्तु वर्तमान के लिए प्रेरक शिक्षक की भूमिका में अमूर्त और मूर्त दोनो रूपों में धरोहर वर्तमान पीढी को जिज्ञासु भी बनातें हैं। अतीत के प्रासंगिक और उपयोगी विचार, कृत्य, परम्परा, स्मारक, तथ्य, तकनीक, कौशल आदि भावी प्रगति को उत्प्रेरित भी करतें हैं। किसी भी देश की ऐतिहासिक धरोहर उसका गौरव होती है। प्राचीन भारत के नगर विन्यास के बहुत से उदाहरण आज भी प्रासंगिक है। छात्र पीढी को विरासत के उत्स से जोडे रखने के लिए महाविद्यालय के प्राचीन इतिहास विभाग ने विषयवस्तु को ई बुलेटिन के रूप में प्रस्तुत करने का निर्णय लिया। विषय पर गंभीर और तथ्यपरक अति विस्तृत विषयवस्तु को इस छोटे से बुलेटिन में समेटना अति दुष्कर एवं श्रमसाध्य है तथापि इसे छात्र हित में छात्रों की भूमिका को प्रोत्साहित करने की दिशा में एक अकिंचन प्रयास के रूप में ही देखा जाना चाहिए। इसमें शिक्षकों के साथ साथ छात्रों के द्वारा संकलित विवरण भी शामिल किए गए हैं। डॉ ओमप्रकाश लाल श्रीवास्तव के प्रति विभाग विशेष कृतज्ञ है जिन्होंने त्रिपुरी, एरच और कपिलवस्तु पर शोधपरक सामग्री बहुत कम समय में उपलब्ध कराई। प्राचार्या एवं प्रबन्धन समिति के सम्मानित सदस्यों की प्रेरणा एवं प्राचीन इतिहास विभाग के सदस्यों की सदाशयता ने इस कार्य को सम्भव बनाया, उनके प्रति विभाग आभार व्यक्त करता है। इस अंक में कुछ ही नगरों का परिचय शामिल किया है। आशा है कि महाविद्यालय विभाग को आगामी अंकों के प्रकाशन की भी अनुमति देगा ताकि प्राचीन ऐतिहासिक नगरों के विवरण की श्रंखला जारी रह सके।

सम्पादक मंडल

निदेशिका

प्राचार्या

प्रोफेसर लालिमा सिंह

मुख्य सम्पादक

डॉ मीनू अग्रवाल

सह सम्पादक

डॉ रीतू जायसवाल

सदस्य

डॉ निशि सेठ

डॉ प्रियंका गुप्ता

इस अंक में प्रकाशित लेखों में प्रस्तुत तथ्य विचार, चित्र आदि के लिए लेखक उत्तरदायी है। अधिकांश चित्र इंटरनेट से गूगल से गृहीत हैं, कुछ चित्र लेखक द्वारा स्वयं निजी स्तर पर प्रस्तुत किए गए है, जो चित्र जिन स्रोतो से उद्धरित हैं उनके प्रति आभार व्यक्त करतें हैं।

डॉ रीतू जायसवाल

एसोसिएट प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास विभाग, एस. एस. खन्ना महाविद्यालय, प्रयागराज

प्रत्येक वर्ष अठारह अप्रैल को सम्पूर्ण विश्व में विश्व धरोहर दिवस मनाया जाता है। इसका मुख्य उद्देश्य है– ऐतिहासिक एवं प्राकृतिक धरोहरों का संरक्षण तथा उनके महत्व से लोगों को अवगत कराना। अपनी संस्कृति की पहचान इन ऐतिहासिक धरोहरों का संरक्षण एवं स्मारकों के सौन्दर्य को सुरक्षित कर उसे संरक्षित करने में जनमानस अपना योगदान प्रदान करें, विश्व धरोहर दिवस का यही उद्देश्य है। 1982 में स्मारक और स्थल अन्तर्राष्ट्रीय परिषद ने 18 अप्रैल को विश्व धरोहर दिवस के रूप में घोषित कियां। इस दिन का एक और नाम The International Day For Monument And Sites है। इसे 1983 में युनेस्को की महासभा द्वारा पहचान मिली। विश्व धरोहर दिवस का उद्देश्य दुनिया भर में विभिन्न स्थलों की सुरक्षा के महत्व पर जोर देना है, जिन्हें विश्व धरोहर का दर्जा प्रदान किया गया है। विश्व धरोहर दिवस 2022 की थीम ''धरोहर और जलवायु'' है।

दशपुर

डॉ मीनू अग्रवाल, प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, एस.एस.खन्ना महिला महाविद्यालय, प्रयागराज

दशपुर अवंति (पश्चिमी मालवा) का प्राचीन नगर था, जो मध्य प्रदेश के ग्वालियर क्षेत्र में उस नाम के नगर से कुछ दूर उत्तर पश्चिम में स्थित आधुनिक मंदसौर है। प्राचीन काल में दशपुर की गणना भारत के प्रमुख नगरों में होती थी। सांस्कृतिक और राजनीतिक दृष्टि से इसका विशेष महत्व था। शक क्षत्रप काल में इसकी गणना महत्वपूर्ण तीर्थ स्थानों में की गई है।

वत्सभट्टि विरचित लेख से ज्ञात होता है कि जब बंधुवर्मा कुमारगुप्त प्रथम का दशपुर में प्रतिनिधि था (436 ई.) वहाँ के तंतुवायों ने एक सूर्यमंदिर का निर्माण कराया तथा उसके व्यय का प्रबंध किया। 36 वर्षों बाद (472 ई.) ही उस मंदिर के पुनरुद्धार की

मालवा खण्ड जिसका एक छोटा सा भाग दशपुर है।

आवश्यकता हुई और यह कुमारगुप्त द्वितीय के समय संपन्न हुआ। बंधुवर्मा संभवतः इस सारी अवधि के बीच गुप्तसम्राटों का दशपुर में क्षेत्रीय शासक रहा। थोड़े दिनों बाद हूणों ने उसके सारे पार्श्ववर्ती प्रदेशों को रौंद डाला और गुप्तों का शासन वहाँ से समाप्त हो गया। ग्वालियर में मिलने वाले मिहिरकुल के सिक्कों से ये प्रतीत होता है कि दशपुर का प्रदेश हूणों के अधिकार में चला गया। किंतु उनकी सफलता स्थायी न थी और यशोधर्मन् विष्णुवर्धन् नामक औलिकरवंशी एक नवोदित राजा ने मिहिरकुल को परास्त किया। मंदसोर से वि॰सं॰ 589 (532 ई) का यशोधर्मा का वासुल रचित एक अभिलेख मिला है, जिसमें उसे जनेंद्र, नराधिपति, सम्राट्, राजाधिराज, परमेश्वर उपाधियाँ दी गई हैं। उसका यह भी दावा है कि जिन प्रदेशों को गुप्त सम्राट् भी नहीं भोग सके उन सबको उसने जीता और नीच मिहिरकुल को विवश होकर पुष्पमालाओं से युक्त अपने सिर को उसके दोनों पैरों पर रखकर उसकी पूजा करनी पड़ी थी। दशपुर को यशोधर्मा ने अपनी राजधानी बनाया था।

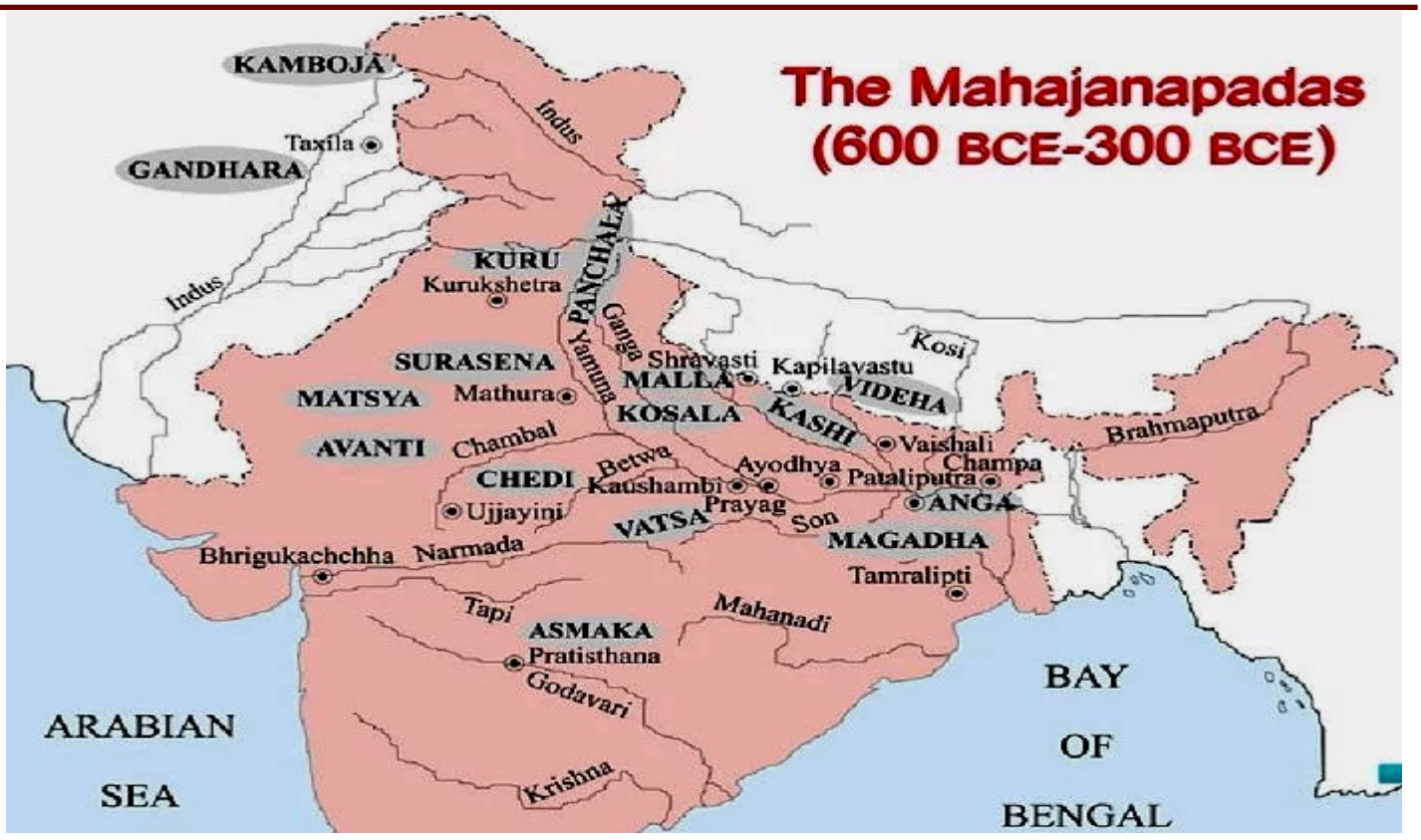

Baroda – A City of Heritage

Ira Bhatnagar, MA, Archaeology,
The Maharaja Sayajirao University of Baroda

Vadodara, formerly known as Baroda, is the third-largest city of the Indian state of Gujarat. It serves as the administrative headquarters of the Vadodara district and is situated on the banks of the Vishwamitri River. It is also referred to as the Cultural capital of Gujarat. Surrounded by the UNESCO Archaeological Park of Champaner on the north- east, the city is filled with its own unique heritage to showcase, both in the form of tangible and intangible heritage.

The city was once called *Chandanavati* after the rule of Chanda of the Dodiya Rajputs. It served as the capital of the clan and was earlier known as *Virakshetra* or *Viravati* (Land of Warriors). Later, it was changed to *Vadpatraka* or Vadodará.According to some sources, is the corrupt form of the Sanskrit word *vatodar*, which means "in the belly of the Banyan tree". The name Baroda appears in the accounts of English travelers and merchants of the 18th century CE. It was later changed to Vadodara which continues till now.

The city of Vadodara, unlike the whole of Konkan state majorly, is filled with the sights of stepwells, locally known as *vavs*. Their water storage effectiveness has helped local residents to survive for hundreds of years, in the semi-arid climate and seasonal fluctuations seen especially in the climate of Vadodara. Scattered all over the city, the vavs vary from being simple structures to ornate seven storey monuments. One of the famous examples of a distinguished vav is the Sevasi vav. A heavily ornate and active 16th century vav which still holds an important position for the locals. The place is still used by people for ceremonial rituals and practices.

The city has been under the rule of the Gaekwards since the early 18th century CE. Gaekwards have been the ruling class under the Marathas of Maharashtra. The advance of Gaekwards also brought in the culture of Maharashtra to the state of Gujarat. Laxmi Vilas Palace stands as the testimony of the amalgamation of both the cultures together. This also introduced the infamous *wada* architecture into this state. Gujarat has been producing carved architecture and traditional furniture in India, even though it was not rich in the production of structural timber. Being connected to the neighboring states by land and sea routes affected the commercial as well as the artistic influence across the region. A spellbinding example of the wada architecture which is possessed by Vadodara stands in the Raopura region in the form of Tambekar wada. Built in a typical wada architecture of Maharashtra, it houses many paintings showcasing the events from the *Vedas* to the Anglo- Maratha War against the British Army.

Vadodara's cultural tradition is rich and prosperous in nature. From the visible monuments to the elaborate celebration of *navratri*, a mixture of both tangible and intangible heritage can be seen here. The city sky lights up with thousands of kites during the day and crackers at night during the festival of *Uttarayan.* While there are various different people in Vadodara, everyone takes part in all activities. The city of Vadodara has welcomed different cultures from different parts of India and accumulated them within oneself. The cosmopolitan nature of this city is reflected in both the forms of heritage which can be best experienced first hand by observing and understanding it.

त्रिपुरी

डॉ सत्यप्रकाश श्रीवास्तव, असिस्टेंट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,
सी.एम.पी. डिग्री कॉलेज, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

त्रिपुरी एक महत्वपूर्ण प्राचीन ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक नगर है, जो नर्मदा तट पर स्थित है। इसकी पुष्टि कलचुरि नरेश जयसिंह के कलचुरि संवत 918 अर्थात् 1166 ई. के जबलपुर ताम्रपत्र लेख, (''त्रिपुर्यां सोमग्रहणे रेवायां विधिवत्स्नात्वा श्री महादेवं''– वी.वी. मिराशी, कॉ. इ. इ. जिल्द 4,पृ. 328,) विजयसिंह के कलचुरि संवत 932 अर्थात् 1180–81 ई. के कुम्भी ताम्रपत्रलेख(''श्रीमत्त्रिपुर्यां युगादौ नर्मदायां विधिवत्स्नात्वा ''–वी.वी. मिराशी, कॉ. इ. इ. जिल्द 4,पृ. 649,) तथा कलचुरि संवत 944 अर्थात् 1193 ई. के रीवा प्रस्तर अभिलेख (वी.वी. मिराशी, कॉ. इ. इ. जिल्द 4, पृ. 350,) से भी होती है जिसमें रेवा अर्थात नर्मदातट पर त्रिपुरी का उल्लेख किया गया है। त्रिपुरी के कलचुरि शासकों ने अनेक अभिलेखों को उत्कीर्ण कराया, जिनमें राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, एवं साहित्यिक उपलब्धियों का वर्णन है।(विस्तार के लिए देखिये–सत्य प्रकाश श्रीवास्तव, कलचुरि अभिलेखों का साहित्यिक एवं सांस्कृतिक अनुशीलन, सुलभ प्रकाशन, वाराणसी 2010) यह संयोग ही है कि आद्य कलचुरियों की राजधानी माहिष्मती की भाँति त्रिपुरी भी नर्मदा तट पर स्थित थी। त्रिपुरी की पहचान वर्तमान में मध्यप्रदेश के जबलपुर से लगभग 9 किमी. दूर आधुनिक तेवर से की जाती है।

कलचुरि काल में त्रिपुरी कला के उन्नयन की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है जिसमें 64 योगिनी मंदिर, नर्मदा की अलौकिक एवं आकर्षक मूर्ति, वाराणसी पटट की भांति पूजा अर्चना हेतु नर्मदा पटट का निर्माण तथा शिव पार्वती की द्यूतक्रीडा रत प्रतिमा आदि प्रमुख है। यद्यपि कलचुरि काल में त्रिपुरी अपनी राजनीतिक एवं सांस्कृतिक उपलब्धियों के कारण अत्यन्त प्रसिद्ध हो गई थी किन्तु इसके पूर्व यहाँ बोधि एवं सेन राजवंशों ने भी शासन किया था जिनके सिक्के उत्खनन में प्राप्त हुए हैं। त्रिपुरी में शासन करने वाले बोधि, सेन और कलचुरि राजवंश के शासकों के सिक्के तो प्राप्त हुए ही हैं परन्तु उनसे बहुत पहले के त्रिपुरी के नगर सिक्के भी कई प्रकार के मिले हैं, जिनपर अलग अलग चिहनों के साथ ईसापूर्व की ब्राहमी लिपि में '***तिपुरि***' उत्कीर्ण है। कलचुरि कालीन संस्कृत कवि राजशेखर ने 'बालरामायण' (3,38,) में त्रिपुरी का वर्णन एक अलौकिक नगर के रूप में किया है–

नर्मदा की अलौकिक एवं आकर्षक मूर्ति,

''सीतास्वयंवरनिदानधनुर्धरेण दग्धात् पुरन्नितपतो विभुना भवेन।
खण्डं निपत्य भुवि या नगरी बभूव
तामेष चैद्यातिलकस्त्रिपुरीं प्रशास्ति।''

सिक्के पर ब्राहमी लिपि में 'तिपुरि' लेख का अंकन

विस्तृत अध्ययन के लिए पठनीय ग्रन्थ–

- सत्य प्रकाश श्रीवास्तव, कलचुरि अभिलेखों का साहित्यिक एवं सांस्कृतिक अनुशीलन, सुलभ प्रकाशन, वाराणसी,
- कार्पस इंसकृप्शनम इंडिकेरम, जिल्द चार,
- आर.के शर्मा, क्वानेज ऑफ सेन्ट्रल इंडिया, नई दिल्ली,

कपिलवस्तु

डॉ ओमप्रकाश लाल श्रीवास्तव, रजिस्ट्रीकरण अधिकारी, से.नि., पुरावशेष एवं बहुमूल्य कलाकृति,
12/1–ए मोतीलाल नेहरू मार्ग, बेलवेडियर प्रेस कम्पाउंड, प्रयागराज,

ईसापूर्व छठी शताब्दी में भारत में सोलह महाजनपदों के अतिरिक्त शाक्य, कोलिय, भग, मोरिय, मल्ल आदि ग्यारह गणतन्त्र भी विद्यमान थे। जहाँ तक शाक्य गण की बात है, रोहिणी और ताप्ती नदियों के मध्य में इनकी स्थिति ज्ञात होती है। जिसकी राजधानी कपिलवस्तु थी। महात्मा बुद्ध शाक्य कुल में उत्पन्न हुए थे। अतः शाक्य गण को विशेष महत्व प्राप्त था। शाक्य गण काफी समृद्ध था किन्तु आपसी वैमनस्य के कारण विडूडभ ने शाक्यों और उनकी राजधानी कपिलवस्तु को भी नष्ट कर दिया था। कालान्तर में कपिलवस्तु के पहचान की भी समस्या उत्पन्न हो गई। कुछ विद्वानों ने कपिलवस्तु की पहचान नेपाल की तराई में स्थित तिलौराकोट से की है। किन्तु किसी ठोस प्रमाण के न मिलने के कारण इस पहचान को स्वीकार नही किया जा सकता है। कपिलवस्तु की पहचान के सन्दर्भ में उल्लेख है कि सन 1897–98 में बर्डपुर के तत्कालीन जमीदार डब्ल्यू. सी. पेप्पे को पिपरहवा स्तूप के उत्खनन से महात्मा बुद्ध का धातुकलश प्राप्त हुआ था, जिस पर ब्राहमी लिपि में अधोलिखित लेख उत्कीर्ण था।

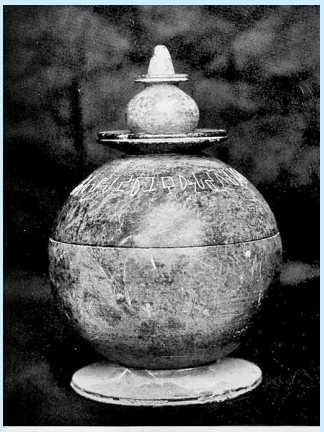

PIPRĀWĀ INSCRIBED VASE CONTAINING RELICS OF BUDDHA
(. . . salilanidhane budhasa bhagavate . . .)

"सुकिति–भतिनं सभगिनिकनं स–पुत–दलनं इयं सलिल–निधने बुधस भगवते सकियानं ।।" (सेलेक्ट इंसकृप्शंस, डी.सी.सरकार, जिल्द 1, पृ. 84,) **अर्थात्** शाक्य कुलोत्पन्न भगवान बुद्ध के शरीर के अवशेष से युक्त यह पात्र सुकीर्ति ने भाइयों, बहनों, पुत्रों और स्त्रियों सहित प्रतिस्थापित किया। कपिलवस्तु के गणतन्त्रीय शाक्य प्रसिद्ध हैं। महात्मा बुद्ध गणमुख्य शुद्धोधन के पुत्र थे। अशोक के लुम्बिनी अभिलेख में शाक्यमुनि बुद्ध के पैदा होने की चर्चा है और पिपरहवा लेख में भगवान बुद्ध के अवशेषों को शाक्यवंशीय सुकीर्ति द्वारा प्रतिस्थापित कराये जाने का उल्लेख है। अब प्रश्न यह है कि तृतीय शताब्दी ईसा पूर्व में, जब पिपरहवा लेख लिखवाया गया था, शाक्य किस क्षेत्र में विद्यमान थे और उनका केन्द्र कहाँ था। तत्कालीन भौगोलिक परिवेश पर विचार करने पर सहज रूप से कहा जा सकता है कि जिस स्थान पर यह अभिलेख पाया गया है, वह शाक्यों का क्षेत्र था और शाक्य गणराज्य का केन्द्र कपिलवस्तु था। अतः शाक्यों द्वारा महात्मा बुद्ध के अवशेषों पर इस स्तूप को कपिलवस्तु में ही बनाया जाना चाहिएं, जहाँ पर भगवान बुद्ध के अवशेषों को शाक्यों के द्वारा सुरक्षित रखने का उल्लेख किया जाए और लेख स्तूप के अन्दर से मिले तो वह स्थान कपिलवस्तु ही होना चाहिए, क्योंकि प्राचीन पालि साहित्य में शाक्यों के द्वारा कपिलवस्तु के अतिरिक्त अन्यत्र स्तूप निर्माण का उल्लेख प्राप्त नहीं होता। अतः पिपरहवा बौद्ध कलश अभिलेख प्रथम पुरातात्विक साक्ष्य है जो कपिलवस्तु के अभिज्ञान में सहायक है।(ओमप्रकाश लाल श्रीवास्तव, पिपरहवा धातु कलश अभिलेख और कपिलवस्तु का अभिज्ञान, *प्रो. जी. आर. शर्मा मेमोरियल वाल्यूम,* इला. विश्व. , 2000, पृ. 401–402)

भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण द्वारा पिपरहवा और गनवरिया के उत्खनन से कुषाणकालीन मृद्भाण्ड मृण्मूर्तियाँ, सिक्के, मनके, मृण्मुद्राएँ एवं मुद्रांक मिले हैं। इनमें ब्राहमी लिपि में अंकित 'उँ देवपुत्रविहारे कपिलवस्तु भिक्षुसंघस' और 'महाकपिलवस्तुभिक्षुसंघस' आदि लेख वाली मृण्मुद्राओं के आधार पर यहाँ पर बौद्ध विहारों एवं संघों के अस्तित्व का पता चलता है।(के. एम. श्रीवास्तव, डिस्कवरी ऑफ कपिलवस्तु, नई दिल्ली, पृ. 83–86) इससे यह भी ज्ञात होता है कि ये बौद्ध विहार एवं संघ कपिलवस्तु में थे जहाँ के उत्खनन से ये मृण्मुद्राएँ उपलब्ध हुई हैं। इस प्रकार कुषाण काल में लिखित रूप से यहाँ पर कपिलवस्तु का उल्लेख प्राप्त होता है। लेकिन इससे बहुत पहले कम से कम लगभग तीसरी शताब्दी ई. पू. में ही सुकीर्ति ने अभिलेख लिखवाकर यह प्रमाण उपस्थित कर दिया था कि शाक्यों ने कपिलवस्तु में महात्मा बुद्ध के अवशेषों को सुरक्षित रखा था। अतः पिपरहवा स्तूप के धातु कलश अभिलेख –प्रथम साक्ष्य– तथा स्तूप के पार्श्व में बौद्ध विहारों के उत्खनन से प्राप्त कपिलवस्तु सम्बन्धी अभिलिखित मृण्मुद्राओं –द्वितीय साक्ष्य– से भी इंगित होता है कि वर्तमान पिपरहवा प्राचीन कपिलवस्तु है।

Sopara

Dr. Ritu Jaiswal,

Associate Professor, Department of Ancient History, S. S. Khanna Girls' Degree College, Prayagraj

Sopara or Suparka, as it was known in the past had a glorious run not only as an important port of the western coast of India and but also as a major trade centre .It had trade links with Egyptians, Greeks, Romans and the Middle East so much so that it finds mention in 2000 year old book Periplus of the Erythraean sea. It is also believed to be the capital of Aparanta (old name for Konkan) and is also the oldesthistorical testament in Mumbai ,in the form of Ashokan edicts. Apart from all these things, Sopara is also an important Teerth.

Sopara finds itself mentioned as an important Teerth on almost all faiths of indian origin.Brahanical text mentioned it as Parshuram Tirtha .Buddhist text Divyavadana mentions itis the place where Buddha itself visited. Jain text mentions it as one of the 84 most revered Teertha of the Jains. Sopata doesn't stop here and also lures a lot of foreign travelers. Travelers ranging from Chinese Huein Tsang to Arab Ali Idrisi .Sopara would have predated at least a fewcenturies earlier since the Sutta Pitaka,of which the Samyutta Nikaya is an integral part, forms the older core of the Buddhist canon. Besides having been mentioned in the Buddhist canon, Sopara is also mentioned in the Mahabharata. It is said that Bheem, one of the protagonists of the Mahabharata, left for Saurashtra from the shores of Sopara. The Jain also have their own cherished connection with this town. It is said that one of the eighty four Gacchas was established in Sopara and was named Soparka Gachhas in honour of the city. Even the extinct sect of Chakras are said to have had a monastic complex near the Ramtirth but several centuries later all the survivors of Ram tirtha reservoir.

Sopara and its vicinity today has some very interesting monuments and artefacts of historical significance.The Erstwhile port site is one such heritage site.The port of Sopara was an inland port quite unlike modern ports that are built on the seafront However today it is at rest of rampant urbanization , a fate that stares all adjacent localities of Mumbai. The famous Sopara stupa which gives the city its sacred veneer was built by Ashoka and subsequently renovated by many other kings. Another very interesting monument is the Chakreshwar temple ,the temple is amodern structure but it houses some very exquisite sculptures like the Brahma,Surya, and Nandi among many other early medieval artefacts.

The city of Sopara, although built on the proceeds of maritime trade, soon became a heaven for various religious sects. With the demise of the trans-oceanic trade Sopara got relegated to the back burners of history thus allowing it' not so glamorous neighbour Mumbai to supersede it materially while relegating itself to the frontiers of the metropolis. It is clearly evident from the Archaeological and literary sources that Sopara was the main entrypoint dating from the pre Ashokan period up to the 3rd Century A.Dand again from 9th to 13th century A.D. There is no evidence of cultural remains from 4 to 9 century and it seems that during this period Sopara had lost its importance. The main cause for the decline of the Ancient port of Sopara was due to the effect of siltation caused by a rise of sea level .Further nearshore and offshore Marine archaeological exploration and excavation would be helpful to ascertain the extent of the Ancient port city.

World Heritage City : Jaipur

Km. Devpriya Khandelwal , MA first year (Archaeology) ,
Maharaja Sayajirao University of Baroda

The city of Jaipur was founded in 1727 CE by Maharaja Sawai Jai Singh II. The old name of Jaipur was Jeypore . It was constructed under the architect Vidhyadhar Bhattacharya. The king wanted to construct a planned city so he took up the construction of this new city which included many structures which were also constructed to enhance the planned system in which Sawai Jai Singh II wanted to develop a walled city . For example, the famous Jantar Mantar construction was taken up in 1734CE which was an astronomical observatory built of stone and masonry and was one of five observatories built in India. The city is also famous for its splendid architectural structure Hawa mahal designed like a bee hive and stands upright without any foundation. Most spectacular feature is that it consists of 953 jharokhas having small peeping holes and its made up of pink and red sandstones and jharokhas that allow free circulation of air within the structure. It's a five storey palace with a height of 50 ft. The city also has a structure named Sawai Man Singh Townhall which was used as first legislative assembly of Rajasthan state. City palace is the main residence of the Royal family of Kachhawa dynasty of Amber , this building also houses several buildings , various courtyards , galleries ,restaurants and offices of the museum trust. The architecture of this palace is a combination of Rajput ,Mughal and European influence. It was constructed in 1727CE.

The city of Jaipur is surrounded by three famous forts namely Amber fort , Nahargarh fort and Jaigarh fort . Amber fort is a very famous fort and known for its artistic style elements . With its large ramparts and series of gates and cobbled paths , the fort over looks Maota lake ,which is the main source of water for the Amber palace and comes under the control of Government of Rajasthan and also is part of hill fort of Rajasthan and according to UNESCO World Heritage site designated in 2013 (at 37th session). Influence of Mughal architecture can be seen here with Rajput architecture. It consists of Diwan i Aam ,Diwan i Khas , Sheesh Mahal ,Jai Mandir and Sukh niwas . There is a temple dedicated to Sheila devi, a goddess of the Chaitanya cult.

Jaigarh fort was constructed in 1726CE . It is located on the hill Cheel ka teela . The fort is famous for the city view it provides. The fort has one canon. It contains a type of pond located at the entrance.

Nahargarh fort was constructed in 1734CE. It once formed a strong defense ring of the city. The fort was originally named Sudershangarh ,but it became known as Nahargarh ,which means ' abode of tigers' .

The city is very famous for its temples . Moti dungri temple is dedicated to Lord Ganesha ,with the idol of lord Ganesha ,the size of which is very big . It was built in 1761 under the supervision of Seth Jai Ram Paliwal.

Birla temple built in 1977- 1988 CE with white marble and modern style. Constructed under the direction of Ramanauj Das and Ghanshyam Birla. Dedicated to goddess Lakshmi and Lord Vishnu (Narayan).

Govind devji Temple dedicated to Govind Dev (Krishna) and his consort Radha.

The city of Jaipur is very famous for its aesthetic architectural features of structures. The city has a structure of spiritual ,religious and historical spirit.

सप्तपुरियों में एक – मथुरा

मोनिका निषाद, शोध छात्रा,
प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, एस. एस. खन्ना महिला महाविद्यालय,
संघटक महाविद्यालय, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

मथुरा भगवान कृष्ण की जन्मस्थली और भारत की प्राचीन नगरी है। हालांकि उत्खनन द्वारा प्राप्त इस नगर का साक्ष्य कुषाणकालीन है। पुराण कथा के अनुसार शूरसेन देश की यहाँ राजधानी थी। भारतवर्ष का वह भाग जो हिमालय एवं विंध्याचल के बीच में पड़ता है, प्राचीन काल में आर्यावर्त कहलाता था। यह यमुना नदी के किनारे बसा हुआ है। वाल्मीकि रामायण में मथुरा को मधुपुर या मधुदानव का नगर कहा गया है तथा यहाँ लवणासुर की राजधानी बताई गई है। इस नगरी को मधुदैत्य ने बसाया था। छठीं शताब्दी ई०पू० में मथुरा प्रसिद्ध शूरसेन जनपद की राजधानी थी और यहां अवन्तिपुत्र शासन कर रहा था। इस समय इस नगर की बड़ी ख्याति थी। जिसे सुनकर स्वयं भगवान बुद्ध इस नगरी में आए। मौर्यकाल में यह मौर्यों के अधीन था। शुंगों का भी इस प्रदेश पर अधिकार था तथा इसके बाद शकों का मथुरा पर अधिकार हो गया है। कुषाणों का मथुरा पर 300 वर्षों तक अधिकार बना रहा इनके समय में मथुरा प्रतिष्ठित केन्द्र के रूप में उभरा ।

उत्तर भारत में मथुरा कला का बहुत बड़ा केन्द्र था। यहां से शुंग कुषाण काल के अनेक वेदिका स्तंभ मिले है। मथुरा से कला तथा शिल्प के लगभग पाँच हजार अवशेष मिले हैं जो ज्यादातर कुषाण काल के हैं। मथुरा ब्राह्मण, जैन तथा बौद्धों का प्रसिद्ध केन्द्र है तथा इन धर्मों से सम्बन्धित अनेकों कला के अवशेष यहां से प्राप्त होते हैं।

मथुरा से अनेक जैन तीर्थंकरो की पाषाण प्रतिमाएँ प्राप्त हुई है जो अत्यधिक सुन्दर और दर्शनीय है। जैन मूर्तियां भी दो प्रकार की हैं पद्मासन तथा कायोत्सर्ग मुद्रा में है। खड़ी मूर्तियां पूर्णतया नग्न है उनकी भुजाएं घुटने तक फैली हैं तथा भौंहों के बीच केशपुंज हैं। बैठी मूर्तियां ध्यान मुद्रा में है। डा०स्मिथ का विचार है कि मथुरा की खोजों से यह सिद्ध होता है कि जैन तीर्थंकरों की मूर्तियाँ ई० सन से पहले विद्यमान थी। मथुरा से बुद्ध तथा बोधिसत्त्वों की खड़ी तथा बैठी मुद्रा में बनी हुई मूर्तियां मिली हैं। उनके व्यक्तित्व में चक्रवर्ती तथा योगी दोनों का ही आदर्श देखने को मिलता है। बुद्ध मूर्तियों में कटरा से प्राप्त मूर्ति विशेष रूप से उल्लेखनीय है जिसे चौकी पर उत्कीर्ण लेख में बोधिसत्त्व की प्रतिमा कहा गया है।

मथुरा के शिल्पियों ने हिन्दू देवताओं की मूर्तियों का भी निर्माण किया था हिन्दू देवताओं में विष्णु ,शिव, सूर्य, नाग, यक्षों की मूर्तियाँ मिलती हैं। मथुरा तथा उसके समीपवर्ती क्षेत्रों से अब तक चालीस से अधिक विष्णु मूर्तियाँ प्राप्त हो चुकी हैं। अधिकांश चतुर्भुजी हैं। तीन हाथ में शंख, चक्र, गदा तथा चौथा हाथ अभय मुद्रा में है। मथुरा धार्मिक सहिष्णुता के लिए प्रसिद्ध है इसलिए यहाँ विविध सम्प्रदाय एक साथ मिलकर रहे थे उनका परस्पर कोई विरोध नहीं था। वैष्णव, बौद्ध, जैन तीनों सम्प्रदाय की मूर्तियां एक स्थान पर बनाई गई थीं।

मथुरा पुरास्थल की प्रारम्भिक खुदाई 1954–55 में की गई थी। फिर 1970–80 ई.के बीच चार सत्रों में की गई थी। यह शहर 600 ई. पू. में आबाद हुआ तीसरी शती ईस्वी तक अविच्छन चलता रहा। पहली से तीसरी शती के बीच सुराही के आकार के पानी छिड़कने के बर्तन, धूपदान, कटोरे, चित्रित मृदभाण्ड, हाथी दांत के कंघे, शंख के कंगन के टुकड़े, कुषाणों की मुद्राएँ, मनौती तालाब आदि मिले हैं। यहाँ से ईटों के आकार के, छत छाजन वाले खपड़े तथा दुर्गीकरण के साक्ष्य का पता चलता है। गुप्तोत्तर काल की वस्तुएं यहाँ नहीं मिलती है जो इसका प्रमाण है कि इस समय तक यह नगर वीरान हो चुका था।

विस्तृत अध्ययन के लिए पठनीय पुस्तकें–

- शर्मा,आर.सी.,बुद्धिस्ट आर्टऑफ मथुरा ,दिल्ली, 1984,पृ.17.
- अग्रवाल, वी. एस., भारतीय कला, पृथ्वी प्रकाशन, वाराणसी, 1966.
- शर्मा, आर. सी. बुद्धिस्ट आर्ट ऑफ मथुरा, दिल्ली, 1984,पृ 51.
- क्विनटैनिल्ला, सोनिया रिह्य, हिस्ट्रीऑफ अर्ली स्टोन स्कल्पचर एट मथुरा, ई. –100 सी. ई., 2007.

Kaushambi

Dr. Ritu Jaiswal, Associate Professor, Department of Ancient History,
S.S.Khanna Girls'Degree College, Prayagraj

The ruins of the ancient city of Kaushambi is situated on the left bank of Yamuna,32 miles away from south-west Allahabad. Traces of ancient habitation cover an area of 8 miles , part of which defended by a complex system of fortification,the mount of ancient rampart together with the surrounding mode form a semicircle with the Yamuna. The rampart has a peripheral circle of more than 21,000 or approximately 4 miles.The average height of the rampart is about 35m. The three sides eastern ,northern and western of the rampart marked by a series of salient and towers at regular intervals are pierced by 1-1 gateway 5 of which were the principal ones, : 2in the eastern,2in the northern and 1 in the northern wing.The remaining 6 were subsidiary gates.The principal gateway shows some special features in their constructions .Of these one of the western sides and other on the eastern sides are situated on a Line running parallel to the Yamuna,which cuts the ancient mound practically through the centre.These two are most complex and elaborate.

In his bid to spread his message Lord Buddha visited Kaushambi, 60 km from Prayagraj, counted one of the most prosperous cities of those times.It was capital of the Vatsa Janapada, with Udayan as the king. This place is believed to have been visited by Lord Buddha in the 6th and 9th year after attaining enlightenment. He delivered several sermons here ,elevating it into a centre of higher learning for the Buddhists. Excavations have revealed ruins of an Ashokan pillar, an old fort and the Ghoshitaram monetary ,besides of huge number of sculptures and figurines cast coins and terracotta objects

Buddha rightly felt that the people were sunk in apathy, ignorance and luxuries ,and only by exalting the elements of Dukkha into a vital immanental norm could wean people away from their appetitive and vegetative path of apparent happiness but real tribulation and misery. Thus from a sociological standpoint the elements of Pessimism was an integral factor of the popularization of Buddhism.

The earliest Culture of Kaushambi was evidently derived from more than one source.Its possible indebtedness of the Harappan Culture and to a wave of Aryan immigrants has already been noticed. Along with the sturdy red ware, the black and red ware also occurs ., Practically throughout the period which from the nature of the material obviously represents a stream of cultural traditions different from the one represented by the former .The first Culture and Kaushambi, therefore is of multiple origin and the early settlers,evidently in the course of their journey to the central Gangetic Valley, came across and absorbed elements of more than one culture.

Gautam Buddha visited Kaushambi several times during the reign of Udayan in his effort to spread the Dharm , the Noble Eightfold Path and the four Noble Truths. According to a Chinese translation of Buddhist canonical text Ekottara Agama,the first image of Buddha (carved from sandalwood) was made at Udayan's request. Ashoka considered Kaushambi important,and placed a pillar there with inscriptions in pali.Jain temple was also constructed in Kaushambi.

Mahabalipuram

Km. Payal Sharma, M.A. Previous Year,
Department of Ancient History, S.S.Khanna Girls' Degree College, AU

Mahabalipuram or Mamallapuram is a historic city and UNESCO World Heritage site in Tamil Nadu, India. During the reign of the Pallava dynasty, between the 3rd century CE and 7th century CE, it became an important centre of art, architecture and literature. Mahabalipuram was already a thriving sea port on the Bay of Bengal before this time. A significant amount of coins and other artefacts excavated from this region also indicate a pre-existing trade relation with the Romans even before it became a part of the Pallava Empire.

Early History

Mahabalipuram's early history is completely shrouded in mystery. Ancient mariners considered this place the land of the Seven Pagodas. There are others who think that Mahabalipuram suffered from a great flood between 10,000 and 13,000 BCE. Controversial historian Graham Hancock was one of the core members of a team of divers from Indian National Institute of Oceanography and the Scientific Exploration Society based in Dorset, UK who surveyed the ocean bed near Mahabalipuram in 2002 CE. He is more inclined to believe the flood theory. His exploration also afforded him a fair glimpse of the vast extent of submerged ruins of the city. After his underwater exploration, he reportedly commented, "I have argued for many years that the world's flood myths deserve to be taken seriously, a view that most Western academics reject … But here in Mahabalipuram, we have proved the myths right and the academics wrong."

Many opinions exist about the origin of the name of the site too. The most popular explanation is that the place is named after benevolent King Bali, also known as Mahabali. The ancient Indian text of Vishnu Puran documents his exploits. After sacrificing himself to Vaman, an incarnation of Vishnu, he attained liberation. "Puram" is a Sanskrit term for a city or urban dwelling. Mamallapuram is the Prakrit version of the original Sanskrit name. During the rule of Mahendravarman I (600 CE – 630 CE), Mahablipuram started to flourish as a centre of art and culture. He himself was a well known poet, playwright and orator. His patronage helped the creation of a number of the city's most iconic landmarks. This period of artistic excellence was duly continued by his son Narasimhavarman I (630 CE – 680 CE) and subsequent Pallava kings.

Art & Architectural Masterpieces Shore Temple

The Shore Temple is located on the beach and if local lore is to be trusted it is the one surviving structure of the legendary Seven Pagodas. Despite continuous erosive effects of the moist and salty sea air, the Shore Temple preserves its beauty in many parts. Built between 700 and 728 CE during the reign of Narasimhavarman II, this is indeed a remnant of a larger complex of temples and civil structures much of which lie under the depth of the sea now.

This five story edifice is so situated that the first rays of the rising sun fall on the presiding deity of the temple, Shiva. Visitors enter the premises through a barrel vaulted *gopuram* (gateway). The *shikhara* (roof) of the actual shrine resembles a pyramidal structure. Like other remarkable

Cave Temples

The Adi Varaha Perumal Cave Temple is the earliest of all Pallava structures in Mahabalipuram, yet the least visited one. The grandeur of the actual *mandapa* (pavilion) is hidden behind a rather ordinary looking latter-day structure. The construction of this site began before the reign of Mahendravarman I. The temple is dedicated to Vishnu (Varaha is an incarnation of Vishnu) and its execution follows the spirit of *Vaishnava Agamic* texts. Both the outer hall and sanctum sanatorium are adorned with elaborate relief sculptures. This temple houses two relief sculptures of Pallava kings, Simhavishnu (c. 537 CE – 570 CE) and Mahendravarman I, accompanied by their respective wives.

The Trimurti Cave is dedicated to the trinity of Brahma, Vishnu and Maheswara (Shiva) representing the process of creation, sustenance and destruction. Aside from the deity, the carved pillars and sculptures also show devotees in various postures. The Varaha and Krishna Caves exhibit mythical tales related to Vishnu and Krishna.

The Mahishasuramardini Cave can be found at a hilltop location. Mahishasuramardini is another name of the goddess Durga who is an incarnation of *Shakti* (power). She earned this name after the slaying of the demon Mahishasura. This is the second, along with the Kotikal Cave, of the caves dedicated to Durga.

Technically speaking, the Yali or Tiger Cave may not be a geographic fissure, but it boasts a set of most elaborately designed pillars and sculptures depicting several mythical creatures, lions and tigers. This also has a relief sculpture dedicated to Narasimhavarman II or Rajasimha (700 CE – 728 CE). In many ways, the Tiger Cave sums up the evolution of the Pallava's cave temple structures over a period of time.

Descent of the Ganges

Alternatively known as Arjuna’s Penance, Descent of the Ganges is a gigantic open air bas-relief sculpted out of pink granite. The dramatic relief sculpture narrates the tales from Indian epics such as the *Mahabharata*. Nearby *mandapa*s, particularly the Krishna Mandapa, however, showcase scenes of pastoral life amid mythical figures. Other similar rock artworks close by have been left unfinished due to some unexplained reason.

Pancha Ratha

Pancha Ratha (five chariots) is an architectural ode to *Mahabharata*'s five Pandava brothers Yudhistir, Bhima, Arjuna, Nakula, Sahadeva, and their wife Draupadi. Thematically and structurally, each *ratha* is significantly different from the other ones, but all of them were carved out of a long stone or monolith. Spread over one to three storeys, their forms vary from square to apsidal. The walls of these ancient edifices are decorated with bas-reliefs and murals. A beautifully carved monolithic *airavata* (elephant) and *nandi* (bull) decorate the premises. Though originally meant to be places of worships, these were never consecrated and used actively for any sacred rites.

Olakkanneshvara Temple

Also known as the Olakkanatha Temple, the Olakkanneshvara Temple (Temple of Shiva, suggestive of the third eye of Shiva) was built about the same time as the Shore Temple. This is located atop a hill some distance away from the beach which gave birth to a belief that it acted as a lighthouse in earlier times. This is also built atop the Mahishasuramardini Cave, but the two are different structures erected at different times.

Mahabalipuram Today

There is another curious structure known as Sri Krishna's Butter Ball that fascinates everyone in Mahabalipuram. It is not a sculpted piece but more of a handiwork of nature. Today, Mahabalipuram is trying to re-create its image as the country's premier beach resort but it has not completely lost touch with its past cultural exploits. Every year, it hosts classical dance and drama festivals to preserve and promote the heritage of a very ancient culture.

काशी

डॉ प्रियंका गुप्ता,
एसिस्टेंट प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास विभाग, एस.एस. खन्ना महिला महाविद्यालय, प्रयागराज

प्राचीनकाल में काशी जनपद और उसकी राजधानी वाराणसी का महत्त्व विशेष रूप से उसकी व्यापाररपक और भौगोलिक स्थिति के कारण था। बनारस शहर अर्द्ध चन्द्राकार में गंगा के बाएं किनारे पर अवस्थित है। पौराणिकि अनुश्रुतियों के अनुसार वरुणा और असि नाम की दो नदियों के बीच में बसी होने के कारण ही इस नगर का नाम वाराणसी पड़ा । वही काशी शब्द की व्युत्पत्ति के आधार पर वह भूभाग जो अधिक जल के कारण कुश और काश के जंगलों से भरा रहता था काशि कहा गया। वैदिक आयों के आगमन से पूर्व काशी के इतिहास के बारे में पुरातात्विक साक्ष्यों की अल्पता के कारण कुछ अनुमान लगा पाना कठिन है। वैदिक साहित्य में काशी के इतिहास की सामग्री तो बहुत सीमित है लेकिन पुराणों में जो वंशावलियां दी हुई है उनके आधार पर महाभारत के पूर्व काशी के इतिहास का ढांचा खड़ा किया जा सकता है। पुराणों के द्वारा काशी के धार्मिक विश्वासों पर और विशेषकर काशी में शिवपूजा के इतिहास पर भी काफी प्रकाश पड़ता है। जातकों से, हमें ज्ञात होता है कि मगध, वत्स, काशी,कोशल और फिर पंचाल मध्य गंगाघाटी के मुख्य जनपद थे। काशी षोडश महाजनपदों में एक थी। बुद्ध के समय तक काशी की स्वतंत्रता नष्ट हो चुकी थी। बुद्ध के समय तक वाराणसी एक स्वतंत्र महाजनपद की राजधानी नहीं रह गयी थी। फिर भी इसकी प्रसिद्धि संपूर्ण भारतवर्ष में थी। इसकी इतनी ख्याति थी कि बुद्ध के महापरिनिर्वाण के लिए प्रस्तावित स्थानों में राजगृह, चंपा, साकेत, कोशाम्बी और श्रावतती के साथ वाराणसी का भी नाम आता है। राजघाट से मिली गुप्तकालीन मुद्राओं से बनारस के तत्कालीन राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक इतिहास पर भी प्रकाश पड़ता है। गुप्त युग में शैव और वैष्णव धर्म अपने चरम विकास को प्राप्त चुके थे। किन्तु प्राचीन लेखों, मूर्तियों और मंदिरों इन सबके आधार पर यह कहा जा सकता है कि गुप्तों के समय में जिस भारत में पूर्ण धार्मिक स्वतंत्रता थी। सारनाथ और मथुरा की कला इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण भी प्रस्तुत करती है।

काशी की गणना तीर्थ क्षेत्र में की जाती है। लक्ष्मीधर के निबंध कृत्यकल्पतरु में तीर्थों में काशी का स्थान प्रथम माना गया है इसका यही कारण नहीं है कि यह गाहडवालों की राजधानी थी क्योंकि बारहवीं सदी तक तो काशी भारत का प्रधान तीर्थ बन चुकी थी। अलबेरुनी के अनुसार ग्याहरवीं सदी के आरम्भ में भारत के सभी भागों से यहां साधु इकठ्ठा होते थे। राजघाट से मिली गुप्तयुग की मुद्राएँ भी काशी के तीर्थर्ध्रूप को प्रकट करती है। गाहडवाल शासक स्वयं को काशी का अधिपवत मानने में गौरव मानते थे। वैष्णव होते हुए भी उनके अनेक दानपत्र शैव मिदिरों से जैसे देवेश्वर, त्रिलोचनेश्वर, अघोरेश्वर, इन्द्रेश्वर और ओम्कारेश्वर इत्यादि से सम्बन्धित है।

विदिशा

डॉ निशि सेठ, एसिसटंट प्रोफेसर,
प्राचीन इतिहास विभाग, एस.एस. खन्ना महिला महाविद्यालय, प्रयागराज

प्राचीन भारतीय ऐतिहासिक नगरो ंमे ंविदिशा अपना विशिष्ट स्थान रखता है। साहित्यिक साक्ष्य और यहाँ से प्राप्त पुरावशेष इस नगर की समृद्ध विरासत से हमारा परिचय कराते है।

भौगोलिक दृष्टि से आधुनिक मध्य प्रदेश में यह नगर बेतवा नदी के तट पर स्थित था। जिसे महिष्मति के बाद मध्य प्रदेश का सबसे प्राचीन नगर माना जाताहै। पौराणिक, साहित्यिक, एवं पुरातात्विक साक्ष्य इस क्षेत्र की प्राचीनता को प्रमाणित करतेहै। सांस्कृतिक एवं व्यापारिक प्रतिष्ठान का पर्याय होकर यह प्राचीन नगरी संस्कृत–साहित्य में वैदिस अथवा वेदिसा, पालीग्रंथो में बेस्सनगर, वैस्यनगर, या विश्वनगर; जैनग्रंथो में भद्दीलपुर या भइडलपुर आदि नाम से उल्लिखित है । पुराणो ंमे ंइसका उल्लेख भद्रावती या भाद्रवातिपुरम् के रूप में मिलता है। इतिहासकारो ंका मानना है कि विविध दिशाआ को यहाँ से मार्ग जाने के कारण ही इस नगर का नाम विदिशा पड़ा (विविधादिशा अन्यत्र इति दिशा)।

ऐतिहासिक परम्पराओं ंमे ंउल्लेख मिलता है कि प्रारम्भिक काल में यहाँ यदुवंशी शासकों का शासन था। सूर्यवंशी राजा सगर और श्रीराम के समय से वहाँ इक्ष्वाकु वंश का अधिपत्य स्थापित होगया। कहा जाता है कि श्रीराम के अनुज शत्रुघ्न ने इस क्षेत्र से यादवों को हराकर इसे अपने पुत्र सुबाहु को सौप दिया था। बाण द्वारा रचित कादम्बरी के अनुसार एक राजा शुद्रक ने विदिशा में राज्य किया था। संस्कृत साहित्य के अनुसार विदिशा क्षेत्र मालवा में सम्मिलित था जिसे आकर नाम से पुकारा जाता था। राजनितिक दृष्टिकोण से विदिशा, मौर्यकाल से लेकर गुप्तोत्तरकाल के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। आजभी यह नगरी मौर्य सम्राट अशोक, शुंग नरेशों, शक–क्षत्रप शासकों, नाग, गुप्त, और परमार शासकों की कलात्मक एवं धार्मिक सहिष्णुता की ऋणी है। साँची से प्राप्त बौद्ध स्तूप एक ओर इस क्षेत्र में बौद्ध धर्म के प्रचलित होने का प्रमाण प्रस्तुत करते है वहीं बेसनगर में संस्थापित हेलियोडोरस का गरुड़ स्तम्भ इस क्षेत्र मे ंब्राह्मण धर्म के प्रभाव को भी स्पष्ट करता है।

ऐतिहासिक घटनाओं का अवलोकन करने पर हम पाते है कि मौर्य शासक अशोक को 18 वर्ष की आयु में उनके पिता बिन्दुसार ने उज्जैन विजय के बाद विदिशा का वायसराय नियुक्त किया। सिंहली परम्परा के अनुसार पाटलिपुत्र से उज्जैन जाते समय मार्ग मे ंपड़ने वाले नगर विदिशा में अशोक ने यहाँ के एक श्रेष्ठी की पुत्री से विवाह किया जो उसकी पहली पत्नी थी। महाबोधिवंश में उसका नाम वेदिश महादेवी मिलता है जिससे अशोक के पुत्र महेंद्र एवं पुत्री संघमित्रा का जन्म हुआ था। उसके ह्रदय में इस नगर के प्रति विशेष सम्मान था। मान्यता है कि शुंगवंश के शासक मौर्य सामंत के रूप में विदिशा में शासन करते थे। अंतिम मौर्य शासक की हत्या के बाद पुष्यमित्र द्वारा शुंगवंश की स्थापना की गई। मौर्यों के बाद शुंगवंशीय साम्राज्य के अंतर्गत आने वाले क्षेत्रो (पाटलिपुत्र, अयोध्या, एवं विदिशा) में यह नगर महत्वपूर्ण था जो शुंग साम्राज्य के पश्चिमी भाग की राजधानी हुआ करता था। पुष्यमित्र के शासन काल में उसका पुत्र अग्निमित्र विदिशा का गवर्नर था। शुंग काल में निर्मित बेसनगर का गरुण स्तम्भ विदिशा के प्राचीन अवशेषो ंमे ंमहत्वपूर्ण स्थान रखता है जिसकी स्थापना यवननरेश अंतियालकिड्स के राजदूत हेलियोडोरस ने की थी, वह शुंगराजा भागभद्र के विदिशा स्थित दरबार मे ंआया था उसने भागवत धर्म ग्रहण किया तथा गरुड़ स्तम्भ स्थापित करवाया। कला की दृष्टि से उच्च कोटि का होने के साथ साथ ब्राह्मण धर्म से सम्बंधित यह पहला प्रस्तर स्मारक है। शुंग शासकों के बाद नागवंशीय शासकों और सातवाहन शासकों ने विदिशा पर आधिपत्य स्थापित किया। प्रो.के.डी.वाजपेयी को तांबे के दो अभिलिखित सिक्के विदिशा से प्राप्त हुए जो पुरालिपि के आधार पर ईस्वी प्रथम शताब्दी के मध्य काल के माने जाते है। बेसनगर से ही वाशिष्ठीपुत्र पुलुमावी की रजतमुद्रा तथा गौतमी पुत्र शातकर्णीका सीसे का सिक्का प्राप्त हुआ है। इसी प्रकार नागवंशीय शासको के सिक्के भी विदिशा से प्राप्त हुए है।

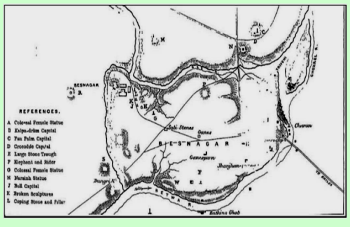

नाग शासकों के बाद गुप्त काल में विदिशा वैष्णवधर्म का प्रमुख केंद्र बन गया। विदिशा, बेसनगर, उदय गिरी तथा अन्य समीपवर्ती क्षेत्रों से गुप्त शासकों के अभिलेख तथा सिक्के प्राप्त हुए है। गुप्त शासक काच एवं रामगुप्त के तांबे के सिक्के भी विदिशा से ही मिले है। परवर्ती कालो में परमार शासकों के अभिलेख तथा विदिशा और उसके समीपवर्ती क्षेत्रों से प्राप्त हुए है जो विदिशा पर परमार राजाओ के आधिपत्य की पुष्टि करते है। इसके बाद के इतिहास में विदिशा का पतन शुरु होगया। कहा जाता है कि कुछ प्राकृतिक कारणों से नगर के समीप बहती नदी बेतना सूख गई या फिर कुछ राजनैतिक समस्या पैदा हो गई, जिससे वहाँ की आबादी नदी के दक्षिणी किनारे की तरफ बस गयी, जो बाद में भीलसा के नाम से जानी जाने लगी।

झूंसी- पुरूरवा की राजधानी प्रतिष्ठानपुर

डॉ मीनू अग्रवाल, प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग,
एस.एस.खन्ना महिला महाविद्यालय, प्रयागराज

गंगा के किनारे की ऊर्जा को समेटे झूंसी प्रथमतः मध्य पाषाणकालीन मानव की आश्रय स्थली बन कर शिकार संग्रहण जंगल कृषि ग्राम्य जीवन शहरी जीवन राजधानी क्रम से गुजरी। अपनी सांस्कृतिक जीवन की अविचल धारा को समेटे आधुनिक झूंसी, जिसका गौरव प्राचीन प्रतिष्ठानपुर और चन्द्रवंशी राजा पुरूरवा के राजप्रासाद के वैभव का साक्षी रहा, जिसकी मनोरम घाटियॉ ययाति और शर्मिष्ठा, सोमपुत्र बुध और इला, पुरूरवा और उर्वशी के प्रणय की पौराणिक गाथाओं का केन्द्र बनी, जहॉ के समुद्रकूप, हंसतीर्थ, उर्वशी तीर्थ, नागतीर्थ, लोक की आध्यात्मिक आस्था के केन्द्र बनें, जहॉ अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न हुए, जहॉ काशीराज की पुत्री अम्बा ने भी तप कर पावन भूमि की मुक्ति को आत्मसात किया, जिसकी गंगलहरो से पावन भूमि पर प्रतिहार नरेश भी सुख समृद्धि को नकार कर वास करते हुए दानकर्म में अभिरूचित हुए, उस झूंसी की आत्मा प्रयाग के सांस्कृतिक विरासत को अपने इतिहास में समेटे गंगा के तट पर नई धार्मिक आस्था, नए पर्यटन बिन्दुओं के साथ समय के साथ प्रतिवर्ष माघ मेले में और कुम्भ पर्वों पर मानो फिर से सजीव हो उठती है।

प्रयाग मे गंगा के पूर्वी तट पर बसी 'झूंसी प्राचीन काल में चन्द्रवंशी राजा पुरूरवा की राजधानी थी, प्राचीन काल में झूंसी को 'प्रतिष्ठानपुर' के नाम से जाना जाता था। अनुश्रुतियों के अनुसार यहाँ प्राचीन काल में एक बार भीषण आग लगी और इस स्थान को 'झुलसी' फिर 'झौंसी' तत्पश्चात 'झूंसी' कहा जाने लगा। आज भी इस स्थल के जमीनी परतों से जलने के अवशेष देखे जा सकते हैं। सम्राट अकबर ने झूंसी का नाम बदल कर 'हादियाबास' रखा लेकिन यह नाम काल के थपेड़ों के साथ गुमनाम हो गया। सिद्ध सन्त गोरखनाथ और उनके गुरु मत्स्येन्द्रनाथ का सम्बन्ध प्रतिष्ठानपुर यानि झूंसी से ज्ञात होता है। दन्त कथा है कि इन सन्तों ने रुष्ट होकर यहाँ के राजा को शाप दे दिया था जिससे यह नगरी उलट गई थी। दूसरी दन्त कथा के अनुसार सन 1359 ई में सैयद अली मुर्तुजा नामक एक फकीर की बददुआ से झूंसी में एक बड़ा भूचाल आया और उसका किला उलट गया। आज भी झूंसी में उलटा किला नाम से एक कुआँ है जिसे 'समुद्रकूप' भी कहते है। वर्तमान में यह कूप एक विषाल ऊँचे टीले पर स्थित है।

झूंसी में समुद्रकूप वाले टीले के दक्षिण में गंगा के किनारे पर सैय्यद सदरुल हक तकीउददीन मुहम्मद अब्दुल अकबर जो 'षेख तकी' के नाम से लोकप्रिय थे, की मजार है। कहा जाता है कि वे 1320 ई में झूंसी में पैदा हुए थे, 1384 में यहीं उनकी मृत्यु हुई। कहा जाता है कि इन संत की मजार पर नवम्बर 1712 ई में फर्रूखसियर आया था। गजेटियर में इस मजार के समीप ही 'सन्त की दातून' नाम से प्रसिद्ध विषाल वृक्ष की परम्परा का भी उल्लेख मिलता है। अनुश्रुतियों से यहाँ के हरिबेंग नामक राजा का पता चलता है जिसके राज्य में ''टका सेर भाजी टका सेर खाजा'' की कहावत प्रचलित थी, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के नाटक ''अंधेर नगरी'' में राज्य की दुर्व्यवस्था का जो उपहास मिलता है वह इसी राजा के काल से जोड़ा जाता है। इस स्थल पर मौजूद खंडहर जिसमें लखौरी इंटें दृश्यमान है, यह प्रकट करती है कि यह कभी किला रहा होगा जो अब एक खण्डहर में बदल कर काल की विवशता की कहानी का प्रतीक बन गया है।

झूंसी में गंगा के तट पर आगरा के रहने वाले गंगा प्रसाद तिवारी, उपनाम गंगोली द्वारा बनवाया हुआ पत्थर का एक शिवाला हैं जो गंगोली श्विाला के नाम से आज जाना जाता है। कहा जाता है कि सन 1800 ई में लगभग सवा लाख रूपए की लागत से यह बना था। इसके स्तम्भों और दीवारों पर नीचे से ऊपर तक देवताओं की असंख्य मूर्तियों और पौराणिक गाथाओं की नक्काशी बेजोड हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ– 1डॉ. **मीनू अग्रवाल, कुम्भपर्व प्रयाग, और प्रयाग की विरासत, साहित्य संगम,**

2. डॉ मीनू अग्रवाल, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा अनुदानित प्रोजेक्ट रिपोर्ट, *कल्चर एंड हेरिटेज ऑफ प्रयाग,* 2012

3. प्रयाग प्रदीप, हिन्दुस्तानी एकेडमी

भीटा (सहजाति)

डॉ मीनू अग्रवाल, प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग,
एस.एस.खन्ना महिला महाविद्यालय, प्रयागराज

जबलपुर लाइन के इरादत गंज स्टेशन से डेढ मील पश्चिम तथा प्रयाग से 12 मील दक्षिण पश्चिम यमुना के दाहिने किनारे पर स्थित भीटा ग्राम के उत्खनन से जनरल कनिंघम को प्राचीन नगर, पुरानी वस्तुएँ, कुछ अभिलेख मिले।

पहले सन 1872 में इस स्थान के एक टीले की खुदाई जनरल कनिंघम ने कराई थी उस समय जो चीजें मिली थी उनके आधार पर कनिंघम का अनुमान था कि इस स्थान का पुराना नाम ''बीतभयपत्तन'' था। परन्तु सन 1910 में मार्शल ने दूसरा टीला खुदवाया तो एक मिट्टी की मुहर पर इसका नाम ''विच्छि ग्राम'' पाया गया। यहाँ से प्राप्त तीसरी सदी की एक मुद्रा पर ''सहिजितिये निगमस'' लिखा हैं। अंगुत्तर निकाय के अनुसार बुद्ध सहजाति नगर गए थे और वहाँ उन्होने चेतिय लोगों को उपदेश दिया था। बुद्ध के शिष्य महाचुन्द भी 'सहजाति' नगर गए थे–''आयस्मा महाचुन्दो चेतिसु विहरति सहजातिय'' । नगर पहले चेदि प्रदेश में था दसवीं सदी ई.पू. से दसवी सदी ई. तक आबाद था। भीटा को वीर चरित्र में उल्लिखित प्राचीन विटभयपट्टन' नामक नगर से समीकृत किया गया है जो महावीर के समय में समृद्धशाली हुआ था। इसमें विटभयपट्टन को राजा उदयन की राजधानी बताया गया है जिसने जैन धर्म ग्रहण कर लिया था।

सन 1871 में डा. भगवान लाल इन्द्र को भीटा से लगभग 1.5 किमी. पूर्व में मनकवार नामक गाँव में पंचपहाड़ नामक डीह से बुद्ध की प्रतिमा प्राप्त हुई थी जिस पर यह लेख अंकित है– ओम् नमो बुधान् भगवतो सम्यक। सम बुद्धस्य स्वमताविरोधस्य इयाम् प्रतिमा प्रति'ठापिता। भिक्षु बुद्धमित्रेण सुवत 100 & 209 महाराज श्री कुमारगुप्तस्य राज्ये ज्ये'ठ मासादि। सर्व दुःख प्रहरणम्।'' सम्प्रति यह प्रतिमा लखनऊ संग्रहालय में हैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि भीटा प्रयाग का व्यावसायिक सम्पर्क केन्द्र या व्यापारिक पड़ाव का स्थल रहा होगा। सहजाति बुद्ध काल में एक प्रसिद्ध निगम था, जो स्थलीय व जलीय दोनों व्यापारिक मार्गों पर स्थित था। एक स्थलीय मार्ग उसे सोरोय्य (एटा जिले का प्रसिद्ध तीर्थ) से मिलाता था। विनयपिटक के अनुसार इसी मार्ग पर चलते हुए स्थविर रेवत सोरेय्य से सहजाती गए थे बीच में जो स्थान पड़े थे वे थे–. सोरेय्य– सांकाश्य– कण्णकुब्ज– उदुम्बुरपुर– अग्गलपुर– सहजाति। वेदब्भ जातक में चेदि देश से काशी जनपद को जाने वाले जिस मार्ग का उल्लेख है वह सम्भवतः सहजाति हो कर ही जाता था। सहजाति कोशाम्बी से स्थल मार्ग से जुड़ा था । इस प्रकार उसका सम्बन्ध तत्कालीन भारत के प्रायः सभी महानगरों से था।

इसके अतिरिक्त भीटा से प्राप्त मृण्मूर्तियाँ प्रारम्भिक काल, मौर्य काल, शुंग, कुषाण और गुप्त काल से सम्बन्धित है। भीटा से मिले मूर्तिशिल्प में प्रधानतः निम्नलिखित का उल्लेख किया जा सकता है– एक पंचास्य शिवलिंग, सूर्यमूर्त्ति, स्थानक चतुर्भुज विष्णु की मूर्ति, 11वीं सदी की कुबेर की मूर्ति, आदि ।

यहाँ स्थित सुजावनदेव मंदिर यमुना के बीच में ऊँची पहाडी पर स्थित है। शाहजहाँ के समय इलाहाबाद के सूबेदार शाइस्ता खान ने सन 1645 ई मे इसका विध्वंस कर एक अठपहल बैठक बनवा दी थी और फारसी में पाँच पद्यों में अपना नाम और उसके निर्माण का हिजरी संवत अंकित कर दिया था जिसका हिन्दी अर्थ इस प्रकार है–''शाइस्ता खान की आज्ञा से यह विचित्र विशाल, सुन्दर तथा अत्यन्त ऊँचा भवन सन 1055 अर्थात् 1645 ई. के मोहम्मद शरीफ के प्रबन्ध से बनकर तैयार हुआ।'' बाद में यह पुनः शिव मंदिर के रूप में परिवर्तित हो चुका है। यहाँ कार्तिक मास में यम द्वितीया को मेला लगता है।

विस्तृत अध्ययन के लिए देखिए –

1. डॉ मीनू अग्रवाल, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा अनुदानित प्रोजेक्ट रिपोर्ट, *कल्चर एंड हेरिटेज ऑफ प्रयाग,* 2012 तथा

2. डॉ मीनू अग्रवाल, कॉलेज विद पोटेंशियल फार एक्सीलेंस के अन्तर्गत स्वीकृत प्रोजेक्ट रिपोर्ट, *इलाहाबाद के प्रमुख पुरातात्विक पुरास्थल–भीटा और गढवा,* 2019–20,

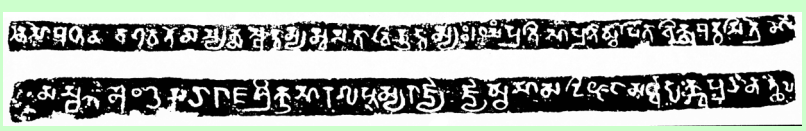

एरच – एक महत्वपूर्ण प्राचीन नगर,

डॉ ओमप्रकाश लाल श्रीवास्तव, रजिस्ट्रीकरण अधिकारी, सेवानिवृत्त, पुरावशेष एवं बहुमूल्य कलाकृति, विभाग मो. 9125049410

उत्तरप्रदेश के झांसी जिले में बेतवा के दाएँ तट पर स्थित एरच परम्परानुसार हिरण्यकश्यपु की राजधानी कहा जाता हैं। एरच के पार्श्व में स्थित ढिकोली पहाडी से भक्त प्रह्लाद को नदी में गिराए जाने की बात कही जाती है। पहाडी से धकेलने के कारण ही इस स्थान को ढिकोली कहा जाता है। प्राचीन परम्पराके साथसाथ एरच ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण स्थान है। यहाँ पर पाषाणकालीन अवशेषों के साथ साथ ताम्र निर्मित द्विभुजी कुल्हाडी भी प्राप्त हुई है जिसका विशेष ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक महत्व है।

एरच से ईसा पूर्व तृतीय एवं द्वितीय शताब्दी के नगर सिक्के एवं नगर मुद्रा

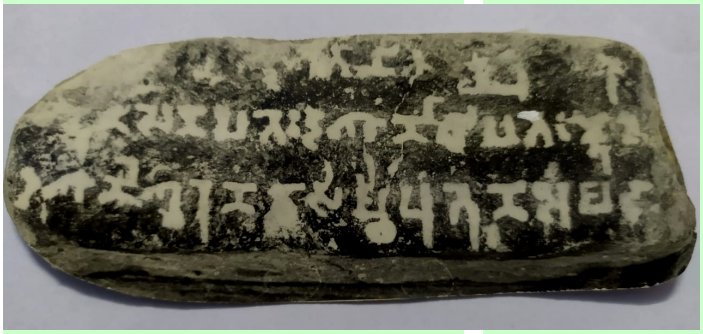

भी पाए गए हैं। इन सिक्कों पर तत्कालीन ब्राहमी लिपि में 'एरकछ' या 'एरकछं' लिखा है। ये सिक्के 21 प्रकार के हैं जिनपर विभिन्न प्रकार के चिह्न पाएँ गए हैं। सिक्कों से एरच के अज्ञात शासक मुगमुख, अजिन, महासेनापति सहस्रमित्र, ईश्वरमित्र, सहस्रसेन, महासेन, मित्रसेन, अमितसेन, सुधर्मा तथा इष्टकाभिलेखों से दाममित्र, शतानीक, अदितिमित्र, मूलमित्र, एवं अषाढमित्र ज्ञात होतें है। एरच से परिव्राजक शासक महाराज हस्तिन का ताम्रपत्र भी प्राप्त हुआ है जिससे पता चलता है कि इस क्षेत्र पर उसका अधिकार था।

एरच के शासकों के सिक्कों पर वेदिका में यूप के अंकन से पता चलता है कि वे वैदिक धर्म को मानने वाले थे। इसकी पुष्टि अभिलेखों से भी होती है जिनमें पुण्डरीक, अश्वमेध एवं सर्वमेध के सम्पादन का उल्लेख है।इस प्रकार एरच राजनीतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक दृष्टि से एक महत्वपूर्ण स्थान था। जहाँ तक इसके ऐतिहासिक महत्व की बात है, ईसापूर्व छठी शताब्दी में एरच चेदि महाजनपद की राजधानी था। नन्द और मौर्य युग में यह मगध साम्राज्य के अन्तर्गत था। मौर्य सम्राट ब्रहद्रथ की हत्या के बाद यह सेनापति पुष्यमित्र के अधीन हो गया। पुष्यमित्र का पुत्र अग्निमित्र विदिशा मे शासन कर रहा था। ऐसा प्रतीत होता है कि एरच इस समय अग्निमित्र के शासन के अन्तर्गत था। यही कारण है कि एरच से अग्निमित्र की एक प्रस्तर मुद्रा प्राप्त हुई थी जिसमें उसे विदिशा का शासक बताया गया है।

एरच से सुज्येष्ठ का एक सिक्का भी मिला है जोऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

विदिशा के पराभव के पश्चात ईसा पूर्व द्वितीय शताब्दी में एरच का महत्व बढ गया और यह राजधानी के रूप में प्रतिष्ठित

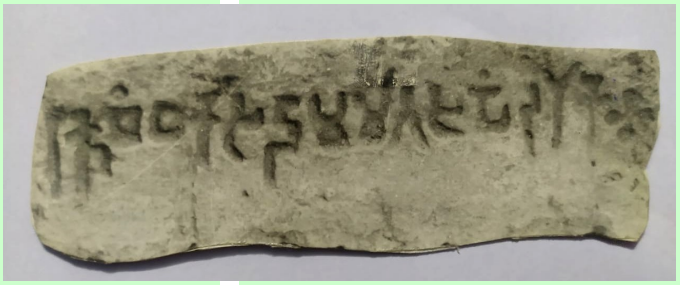

हुआ। ईसापूर्व प्रथम शताब्दी में यहाँ के शासक दाममित्र ने एरच में पुण्डरीक यज्ञ और मूसानगरमें अश्वमेध यज्ञ किया था। आषाढसेन के इष्टकाभिलेख में यहाँ के शासकों को 'सेनापति' तथा 'दशार्णाधिपति' कहा गया है। इस अभिलेख के आधार पर महाकवि कालिदास का समय ईसापूर्व द्वितीय शताब्दी तथा दाममित्र के अभिलेख के आधार पर सेनापति पुष्यमित्र का वंश 'बैम्बिक' प्रमाणित होता है।

इस प्रकार एरच एक ऐसा ऐतिहासिक नगर है जहाँ से प्राप्त पुरावशेष भारतीय इतिहास के अन्धकार युग पर प्रकाश डालते है। इस सन्दर्भ में पुष्यमित्र के वंश ईसापूर्व द्वितीय शताब्दी, और कुषाण शासकों के मध्य एरच से मित्र और सेन राजवंश के अनेक अज्ञात शासकों एवं उनके यज्ञ आदि धार्मिक कार्यों के बारे में जानकारी प्राप्त होती है। इस अवधि में एरच दशार्ण की राजधानी भी प्रमाणित होता है। यहाँ के अभिलेखों के माध्यम से ही कालिदास का समय और पुष्यमित्र के राजवंश पर नया प्रकाश पडता है, जो भारतीय इतिहास की दष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

विस्तृत जानकारी हेतु पठनीय ग्रन्थ–

- Archaeology of Erach : Discovery of New Dynasties, Sulabh Prakashan, Varansi,1991,
- Erach Rediscovered : coins inscriptionsseals and Sealings, Rajgor's Heritage Hub,Mumbai, 2020
- ,एरच के अभिलेख एवं सिक्के, ब्रज संस्कृति शोध संस्थान, वृन्दावन, 2019